दार्शनिकों की नज़र में बचपन

सिद्धार्थ शुक्ला*

प्रस्तावना

बचपन के बारे में सोचिए कि कैसा स्वतंत्र व उल्लासपूर्ण अपना बचपन था? कैसे छोटी-छोटी वस्तुएँ, घटनाएँ व क्रियाकलाप हमें आनंद प्रदान करते थे। रिमझिम करती बारिश में भीगना, पानी से भरे गड्ढों में कूदना, भरी गर्मियों में भी बाहर उन्मुक्त होकर खेलना तथा थककर चूर हो जाने पर कहीं भी गहरी नींद के आगोश में सो जाना, आज भी हमें आनंददायी अनुभूति के रूप में याद है।

अब ज़रा अपने आस-पास के बच्चों के बचपन के बारे में सोचिए कि क्या उनके लिए ऐसा वातावरण है जिसमें वे भयरहित, उन्मुक्त तथा स्वतंत्र होकर अपना बचपन जी सकें? ऐसा बचपन जिसमें उनकी उत्सुकता, चंचलता, उन्मुक्तता, स्वतंत्र रहने की चाह को, उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप में हमारे द्वारा स्वीकार किया जाता हो, शायद नहीं। उनके बचपन को आनंदमयी बनाने में सहभागिता व ज़िम्मेदारी वयस्कों की भी है। परंतु, शायद हम अपनी इस ज़िम्मेदारी को अनदेखा कर जाते हैं अथवा भूल जाते हैं।

एक बच्चे का बचपन कैसा हो? यह उनकी पसंद का हो या वयस्कों द्वारा चाहा गया हो। बचपन को आनंददायी बनाने के लिए उसे क्या मात्र सुख-सुविधाओं की ही आवश्यकता होगी, या उसे बचपन की स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार जीने की स्वतंत्रता की आवश्यकता होगी। क्या बचपन को सुनिश्चित करने के लिए अधिकारों को भी सुनिश्चित किया जाना होगा? बच्चे के बचपन को स्वाभाविक रूप से बनाने में शिक्षक, परिवार, समाज एवं अन्य व्यवस्थाओं की क्या भूमिका होनी चाहिए। आइए, विभिन्न दार्शनिकों के अनुसार इसको जानें।

बचपन

1992 में बाल-अधिकार समझौते पर हस्ताक्षर के बाद भारतवर्ष में बच्चे को एक पूर्ण इकाई के रूप में संबोधित किया जाने लगा है। इस वैधानिक स्वीकृति होने के बाद भी सामाजिक स्वीकार्यता में बहुत-सी बाधाएँ हैं।

आज हमारे समाज में बचपन बड़ों के मुताबिक ही चलता है और बड़ों का सारा ध्यान बच्चों को सभ्य,

---

* *सह-प्राध्यापक*, विक्टोरिया कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, भोपाल (मध्य प्रदेश)

सुसंस्कारित और आज्ञाकारी वयस्क बनाने पर होता है, जबकि उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों (जिज्ञासा, कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता आदि) व उनके स्वतंत्र अस्तित्व को भी समझना आवश्यक है। इन सहज प्रवृत्तियों की स्वीकृति के बिना बच्चों का जीवन कितना आनंदमयी रह पाएगा यह चिंतनीय प्रश्न है?

बचपन का स्वरूप

बचपन के अनुभवों को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं उदाहरण के लिए, परिवार में सदस्यों की संख्या और आर्थिक स्थिति, परिवार तथा समुदाय के रीति-रिवाज़, परंपराएँ, उनके नैतिक मूल्य और विश्वास, आवास, क्षेत्र आदि। जिस प्रकार के समाज में हम रहते हैं, वह हमारे बचपन को प्रभावित करता है। पाँच वर्ष का एक बालक स्कूल जाने लगता है, उसी उम्र का दूसरा बालक दूध दोहने तथा खेती-बाड़ी में अपने पिता की मदद करता है और पाँच वर्षीय अन्य बालक सड़कों पर अखबार बेचता है।

भारत में बचपन को अधिक रचनात्मक अवसर देने एवं उसे शिक्षा से जोड़ने का इतिहास काफ़ी समृद्ध रहा है। वर्ष 1950 में भारतीय संविधान में 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया था। वर्ष 1951 में बालश्रम पर रोक लगाने तथा बच्चों का सृजनात्मक जीवन सुनिश्चित किए जाने के लिए बालश्रम निरोधक कानून बनाया गया। इसी क्रम में वर्ष 1975 में 0 से 6 साल की आयु के बच्चों को पोषणाहार और पूर्व प्राथमिक शिक्षा के लिए समेकित बाल विकास सेवा (Integrated Child Development Services) नामक योजना आरंभ की गई। वर्ष 2000 में बचपन को विविध खतरों से बचाने के लिए बाल संरक्षण अधिनियम अस्तित्व में आया। वर्ष 2009 में बच्चों को शिक्षा का अधिकार मिला।

शिक्षा ने भारतीय समाज में एक विशाल संगठित क्षेत्र का स्वरूप ग्रहण किया है। भारतीय योजना आयोग (अब नीति आयोग) ने अपनी तीसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में भी शिक्षा के बारे में कहा था कि वह द्रुत आर्थिक विकास और प्रौद्योगिक (Technology) प्रगति प्राप्त करने और ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने में एक अकेला सबसे महत्वपूर्ण कारक है, जो बच्चों के शैक्षिक विकास के साथ पूर्ण न्याय कर सकता है।

संयुक्त एवं एकांकी परिवार में बचपन

परिवार सभी सामाजिक संस्थाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और व्यापक है। पारिवारिक संस्था के बिना कोई भी मानव समाज नहीं होता। बड़े और छोटे, आदिम और सभ्य, पुरातन और आधुनिक सभी समाजों ने अपनी प्रजातियों के प्रजनन और बच्चों के पालन-पोषण की प्रक्रिया को संस्थाबद्ध किया है। यह एक स्थायी और सार्वभौम संस्था है और मानव जीवन की स्थायी संस्थाओं में से एक है।

संयुक्त परिवार में बच्चों की परवरिश का भार केवल माता-पिता पर ही निर्भर नहीं रहता है बल्कि बच्चों के दादा-दादी, नाना-नानी, व चाचा-चाची आदि पर भी निर्भर रहता है। यदि किसी कारणवश माता-पिता नहीं कमा पा रहे हैं तो बच्चों की परवरिश की ज़िम्मेदारी पूरे घर पर होती है। बड़ों में जो कौशल

Chapters- PS-April 2016.indd 23 27-07-2017 PM 12:51:57

और हुनर होता है वह बच्चों में सहज तरीके से आता है। इसके विपरीत कभी-कभी बुरी प्रवृत्तियाँ भी बच्चों में आ जाती हैं। संयुक्त परिवार में बच्चों में धैर्य, सहनशीलता और आपसी सामंजस्य बेहतर तरीके से विकसित होता है। बच्चों के पास सीखने के कई तरीके होते हैं। वे बड़ों से इतिहास जान लेते हैं। पुराने समय में कैसे, कब, क्या होता था? इनकी जानकारी भी उन्हें बुज़ुर्गों से आसानी से मिल जाती है। आपसी चर्चाएँ, बहसें और विभिन्न धारणाओं को देखने-सुनने और समझने के मौके मिलते हैं। इसमें प्रेम, सहयोग एवं समन्वय की भावना का विकास, धैर्य, त्याग और सहनशीलता का विकास, खेलने और मनोरंजन हेतु लोग और साथी भी होते हैं। संयुक्त परिवारों में बच्चों पर अत्यधिक निरंकुशता भी रहती है। उनका समय अपनी पहचान बनाने में काफ़ी लगता है। संयुक्त परिवार में बच्चों की निर्णायक भूमिका को काफ़ी लंबे समय बाद स्वीकार किया जाता है।

एकल परिवार में माता-पिता का सारा ध्यान व्यवसाय या अन्य कार्यों में केंद्रित हो जाता है। जहाँ माता-पिता दोनों कामकाज पर चले जाते हैं, तो बच्चे अकेले घर में रहते हैं। इससे ऐसे बच्चे आत्मनिर्भर और ज़िम्मेदार होते जाते हैं, किंतु बच्चे एकाकीपन का अनुभव करना, खेल और मनोरंजन हेतु साथियों की कमी लगातार महसूस करते हैं। एकाकी परिवारों की आर्थिक पूर्ति के लिए बच्चे माता-पिता पर ही निर्भर रहते हैं। इन परिवारों में बच्चों में असुरक्षा की भावना भी पनपती है। समाजीकरण की प्रक्रिया काफ़ी धीमी रहती है और बच्चे आत्मकेंद्रित होते चले जाते हैं।

एकल व संयुक्त परिवारों में लालन-पालन के चलते बच्चों की शिक्षा और व्यक्तित्व पर अलग-अलग प्रभाव पड़ते हैं।

भारतीय संदर्भ में बहु-बचपन

एक बच्चे का बचपन कई दौर से गुज़रता है। उसके परिवार की आर्थिक व अन्य परिस्थितियों का प्रभाव उसके बचपन पर पड़ता है। अपनी आजीविका कमाने के साथ-साथ अध्ययन करने वाले बच्चे का बचपन भी अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग होता है। अपने कार्यक्षेत्र में अलग, स्कूल में अलग और घर में उसका बचपन बिल्कुल ही अलग होता है। यह उसका बहु-बचपन कहलाता है अर्थात् भिन्न-भिन्न स्थानों में बचपन का स्वरूप भिन्न-भिन्न होना। निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों में बचपन के मायने अलग हैं। श्रमिक, कामगारों के बच्चों का बचपन बहुलता भरा होता है। उनका श्रम के स्थान पर बचपन अलग होता है तो स्कूल में अलग होता है, उसी प्रकार से घर में उनका बचपन बिल्कुल अलग होता है। बच्चों के बचपन को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि बच्चा किन-किन परिस्थितियों से गुज़रता है और ये परिस्थितियाँ उसके बचपन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

विभिन्न दार्शनिकों के बचपन पर विचार

रवींद्रनाथ टैगोर

रवींद्रनाथ टैगोर का जन्म 6 मई 1861 ई. को बंगाल के एक शिक्षित, धनी तथा सम्मानित परिवार में हुआ था। रवींद्रनाथ टैगोर ने *गीतांजलि* का आंग्ल भाषा में

Chapters- PS-April 2016.indd 24 27-07-2017 PM 12:51:58

अनुवाद किया। इसके लिए उन्हें नोबल पुरस्कार दिया गया। टैगोर का विचार था कि बच्चों की खूबसूरती उनकी सहजता, विकास की उनकी क्षमता और खास तरह की देहाती खुलेपन पर निहित होती है। परंपरा के बंधनों से वे मुक्त होते हैं और मुख्यत: आंतरिक इच्छा और भावनाओं (संवेदों) से संचालित होते हैं। जीवन के विस्तृत मैदान में अपना रास्ता वे खुद खोजते हैं, भरपूर आनंद के साथ अपने अनुभव से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

इन्होंने बचपन को एक विकासमान पौधा माना है। इसकी तुलना उन्होंने कुछ इस प्रकार की है कि "बच्चों का बचपन पौधे की नाजुक पत्तियों की तरह प्रस्फुटित होता है जहाँ बच्चों के शरीर की बहुत-सी कोशिकाओं की तेज़ी से वृद्धि होती है। प्राकृतिक ढंग से जिस प्रकार पौधों की पत्तियाँ खुली हवा में लहराती हैं, उसी प्रकार बच्चे भी अपने प्राकृतिक रूप से लहराते हैं। बस ध्यान यह रखना है कि जीवन के शुरुआती दौर में किसी प्रकार की कोई दुर्घटना न हो, जिससे उनके विकास में अवरोध पैदा हो जाए और बच्चे के अंदर की शक्ति, जीवन और समृद्धि की खोज की आंतरिक इच्छा मर न जाए।"

बचपन में बच्चों के खेलों का समय निरर्थक नहीं होता है। कठिन भविष्य की माँगों से वह गहरे जुड़े होते हैं। यह अलग बात है कि बच्चों के शुरुआती दिनों तक आत्मरक्षा की चिंताएँ माता-पिता को करनी चाहिए। बचपन एक खूबसूरती, सादगी के साथ, अनुभव में सीखते हुए, कार्य करने में शिक्षा सत्र का उद्देश्य सृजनात्मक संभवानाओं से भरे वातावरण में बच्चों को अधिकतम स्वच्छंदता उपलब्ध कराना, उन्हें खेल की खुशी प्राप्त करने के अवसर देना, खेल जो कार्य है, कार्य जो खोज है, कार्य जो खेल है जैसे कि नवप्राप्त अनुभव का पुनः अनुकरण। बच्चों के विकास के लिए आवश्यक है उन्हें स्वतंत्रता प्रदान करना जिसकी उन्हें ज़रूरत नवजात पौधे की तरह होती है। आत्मविस्तार के लिए खुला मैदान जिसमें सब तरह का नवजीवन प्रशिक्षण और आनंद दोनों प्राप्त करना है।

छह से बारह वर्ष की आयु के बीच ही विकासमान बालक देखने, सूँघने, सुनने, चखने और सबसे आगे बढ़कर छूने और हाथों के प्रयोग के जरिए विभिन्न प्रभाव अर्जित करता है। इसलिए शिक्षासत्र में शुरू से ही बच्चा हस्तशिल्प और गृहशिल्प में प्रशिक्षु की तरह दाखिल होता है।

टैगोर का विचार था कि बचपन में बालक का विकास उसकी रुचियों तथा आवेगों के अनुसार होना चाहिए। इसके लिए उसे प्रत्यक्ष स्रोतों से स्वतंत्र प्रयासों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान को अर्जित करने के अवसर मिलने अत्यंत आवश्यक हैं। इनका विचार था कि शिक्षा प्राप्त करते समय बालक को स्वतंत्र वातावरण मिलना परम आवश्यक है। इसके लिए उसे हर प्रकार के बंधनों से अलग रखना चाहिए, वरन् वह कक्षा में डर के मारे अजायबघर के नमूनों की भाँति चुपचाप बैठा रहेगा। इस कारण टैगोर भी प्रकृति को बालक की शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ साधन मानते थे। वे कहते थे कि बालक की शिक्षा प्राकृतिक होनी चाहिए। इस प्रकार के शैक्षिक वातावरण से बालक और प्रकृति के मध्य वास्तविक संपर्क स्थापित होता है, जिससे

बालक को प्रसन्नता तथा आनंद का अनुभव होते हुए प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है।

महात्मा गांधी

गांधी जी का विचार था कि बचपन से ही बालक की समस्त शक्तियों का विकास करना चाहिए, जिससे वह पूर्ण मानव बन जाए। पूर्ण मानव का अर्थ बालक के व्यक्तित्व के चारों तत्त्वों — शरीर, हृदय, मन तथा आत्मा के समुचित विकास से है। माँ-बाप अपने बालकों को जो सच्ची संपत्ति समान रूप से दे सकते हैं, वह है उनका चरित्र और शिक्षा की सुविधाएँ। माता-पिता को अपने लड़कों और लड़कियों को स्वावलंबी बनाने की, शरीर-श्रम के द्वारा निर्दोष जीविका कमाने लायक बनाने की कोशिश करनी चाहिए।

गांधी जी यह मानते थे कि बालक जन्म से बुरा नहीं होता। यदि माता-पिता बालक के जन्म के पहले और जन्म के पश्चात् जिस समय वह बड़ा हो रहा हो, सदाचार का पालन करें तो यह जानी-मानी बात है कि बालक स्वभावतः सत्य और प्रेम के नियमों का ही पालन करेगा। यदि हम अपना अहंकार छोड़कर कुछ नम्र बन जाएँ, तो जीवन के बड़े से बड़े पाठ हम बुज़ुर्गों और विद्वानों से नहीं बल्कि जिन्हें अज्ञान माना जाता है, उन बालकों से सीख सकते हैं।

हमारे बच्चों को बचपन से ही परिश्रम का गौरव सिखाना चाहिए। हमारे बच्चों की पढ़ाई ऐसी नहीं होनी चाहिए, जिससे वे मेहनत का तिरस्कार करने लगें।

रूसो

रूसो के अनुसार बचपन, जन्म से लेकर पाँच वर्ष की अवस्था है। इस अवस्था के संबंध में रूसो ने कहा है कि शैशव काल में शिक्षा का विकास उसकी योग्यताओं के अनुकूल सुनियोजित स्वतंत्रता से होना चाहिए। जिसमें शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चे के शारीरिक विकास से है जो कि बालक के अंग-प्रत्यंग के संपूर्ण विकास से हो सकता है। बचपन में बच्चे को खेलने-कूदने, सोचने-समझने एवं तर्क-वितर्क के काम में पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

रूसो का मत था कि ''शरीर का विकास उसके अंगों, इंद्रियों तथा शक्तियों का पर्याप्त विकास होना चाहिए'' जहाँ तक संभव हो बालक की आंतरिक क्षमताओं का स्वच्छंद विकास करना चाहिए। बालक को जीना सिखाना शिक्षक का कार्य है। इनका कहना था कि ''मैं पुस्तकों से घृणा करता हूँ, वे केवल उन बातों के बारे में बोलना सिखाती हैं, जिन्हें हम नहीं जानते।''

रूसो का मत था कि जन्म से 12 वर्ष की आयु तक बालकों को दुर्गुणों से बचाने की शिक्षा देनी चाहिए ना कि गुणों या मूल्यों की धनात्मक शिक्षा, अर्थात् निषेधात्मक शिक्षा, जिसमें बालकों को एक पाठ्यक्रम से बाँध दिया जाता है। बालकों को पाठ्यक्रम से बाँधने के बजाय स्वतंत्र रूप से घूमने-फिरने, कार्य करने एवं अपनी आंतरिक शक्तियों का विकास करने दिया जाना चाहिए। इस प्रकार रूसो बालकों को उनके स्वभाव, रुचियों और बाल-प्रकृति के विरुद्ध कुछ भी पढ़ाने या सिखाने के विरोधी थे।

Chapters- PS-April 2016.indd 26 27-07-2017 PM 12:51:58

फ्रोबेल

फ्रोबेल के अनुसार बालक जन्म से ही सद्‌गुणों एवं अच्छी प्रवृत्तियों से युक्त रहता है। उनका विश्वास था कि बालक के वर्तमान एवं भविष्य के विकास का सूचक उसके अंतर्गत निहित शक्तियाँ ही हैं। फ्रोबेल के अनुसार बालक के बचपन संबंधी विकास की निम्नलिखित अवस्थाएँ हैं —

1. **शैशवावस्था** — शैशवावस्था के विकास में खेल के महत्त्व को समझ कर ही फ्रोबेल ने खेल के महत्त्व को स्वीकार किया। उन्होंने खेल द्वारा शिक्षा के सिद्धांत को अपनी शिक्षण पद्धति का आधार बनाया। उनका विश्वास था कि खेल द्वारा बालक की स्वाभाविक रुचि तथा प्रवृत्तियों का विकास होता है। उसमें सामूहिक रूप से रचनात्मक कार्य करने की भावना विकसित होती है। उसमें परस्पर सहयोग, सहिष्णुता तथा सद्‌भावना की वृद्धि के साथ ही व्यावहारिक कुशलता का भी विकास होता है। इसलिए खेल एक आनंद प्राप्ति का साधन ही नहीं, वरन् इसका अपना शैक्षिक महत्त्व भी है। खेल के माध्यम से बालक अपने आंतरिक भावों की सरल और मधुर अभिव्यक्ति करता है जिससे ईश्वरीय एकता के शाश्वत नियम को समझने में सहायता मिलती है।

2. **बाल्यावस्था** — यह सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। मुख्यतः भाषागत क्रियाओं एवं खेलों का काल है। इस काल की नियंत्रित आवृत्यात्मक क्रियाएँ, संगीत का संयोग, प्रधान शैक्षिक क्रियाएँ हैं। इसके अंतिम चरण में कार्यों या व्यापारों की संरचनात्मक क्रियाएँ होने लगती हैं। फ्रोबेल ने गीतों, हाव-भावों तथा रचनात्मक कार्यों में पूर्ण संबंध देखा कि बच्चा जो कुछ सीखता है, पहले गीत द्वारा अभिव्यक्त करता है, तब उसे हाव-भाव के प्रदर्शन से अभिव्यक्त करता है और अंत में कागज़ और मिट्टी की रचनात्मक चीजों से उसे प्रदर्शित करता है। इस प्रकार मस्तिष्क, वाणी तथा हस्त आदि तीनों का संतुलित विकास होता है। तीनों क्रियाएँ ज्ञानेंद्रियों, अंगों तथा मांसपेशियों को पर्याप्त अभ्यास करवाती हैं।

3. **किशोरावस्था** — इस काल में संरचनात्मक क्रियाओं का विकास होता है। अतः संकल्प दृढ़ता बनाने वाली क्रियाएँ, सामाजिक क्रियाएँ, सामूहिक क्रियाएँ, कहानी-कथाएँ सुनाना, प्रकृति-अध्ययन आदि क्रियाओं के साथ गणित, ज्यामितीय, चित्रकला एवं धर्म आदि की शिक्षा चलती है। फ्रोबेल ने स्कूल का एक अनिवार्य सामाजिक अभिकरण के रूप में महत्त्व बढ़ा दिया। उनके अनुसार, स्कूल को समाज का लघु रूप दिया गया जहाँ बच्चे जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। वे सहयोग, सहानुभूति, सहकारिता और उत्तरदायित्व जैसे गुणों को सिखाते हैं।

सारांश

बचपन एक आनंदमयी अवस्था है जिसमें बच्चों की उत्सुकता, चंचलता, उन्मुक्तता, स्वतंत्र रहने की चाह एवं उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति आदि समाहित होती हैं। किंतु आज हमारे समाज में बचपन बड़ों

के मुताबिक ही चलता है और बड़ों का सारा ध्यान बच्चों को सभ्य, सुसंस्कारित और आज्ञाकारी वयस्क बनाने पर होता है, जबकि उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों (जिज्ञासा, कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता आदि) व उनके स्वतंत्र अस्तित्व को भी समझना आवश्यक है। इन सहज प्रवृत्तियों की स्वीकृति के बिना बच्चों का जीवन कितना आनंदमयी रह पाएगा यह चिंतनीय प्रश्न है? बचपन को विविध खतरों से बचाने के लिए वर्ष 2000 में बाल-संरक्षण अधिनियम अस्तित्व में आया तथा वर्ष 2009 से बच्चों को शिक्षा का अधिकार मिला।

एकल व संयुक्त परिवारों में लालन-पालन के चलते बच्चों की शिक्षा और व्यक्तित्व पर अलग-अलग प्रभाव पड़ते हैं। संयुक्त परिवारों में जहाँ बच्चों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान देते हैं वहीं दूसरी ओर एकल परिवारों में स्वतंत्रता, स्वायत्तता या इच्छाओं की पूर्ति के अपेक्षाकृत अधिक अवसर होते हैं जिससे बचपन में आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता आदि के विकास के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। एक बच्चे का बचपन कई दौर से गुज़रता है। उसके परिवार की आर्थिक व अन्य परिस्थितियों का प्रभाव उसके बचपन पर पड़ता है। अपने कार्यक्षेत्र में अलग, स्कूल में अलग और घर में उसका बचपन बिल्कुल ही अलग होता है। यही उसका बहु-बचपन कहलाता है अतः बचपन के संदर्भ में विभिन्न दार्शनिकों ने विभिन्न विचार व्यक्त किए हैं जिससे कि बच्चों में सर्वांगीण विकास हो सके।

सदंर्भ

आचार्य, संघमित्रा. 2015. बचपन से बचपन तक. *प्राथमिक शिक्षक*. वर्ष 39, अंक 1, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली.

एन.सी.ई.आर.टी. 2005. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा*. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली.

कुमार, अनूप. 2006. रवींद्रनाथ टैगोर पर शैक्षिक चिंतन की आधुनिकता. *भारतीय आधुनिक शिक्षा*. वर्ष 25. संयुक्तांक 1-2, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली.

गुप्ता, एस. और जे.सी. अग्रवाल, 2011. *उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा*. क्षिप्रा पब्लिकेशंस. दिल्ली.

निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम — 2009. भारत का राजपत्र. 27 अगस्त 2009. भारत सरकार, नयी दिल्ली.

रूहेला, सत्यपाल. 2007. *विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा*. अग्रवाल पब्लिकेशंस, आगरा.

सक्सेना, एन. आर. स्वरूप, और संजय कुमार, 2010. *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ.

Chapters- PS-April 2016.indd 28 27-07-2017 PM 12:51:58